इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

BPSE-143

भारत में राज्य की राजनीति

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. डी. गोपाल (अध्यक्ष)
राजनीति विज्ञान संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ,
मैदान गढ़ी,
इग्नू, नई दिल्ली – 110068

प्रो. अमित प्रकाश
सेन्टर फॉर द स्टडी ऑफ लॉ एण्ड गर्वनेन्स
जवाहरलाल नेहरू विष्वविद्यालय,
नई दिल्ली

प्रो. ए. के. सिंह
सेन्टर फॉर फेडरल स्टडीज
जामिया हमदर्द विष्वविद्यालय,
नई दिल्ली

प्रो. सारतिक बाग
राजनीति विज्ञान विभाग,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विष्वविद्यालय,
रायबरेली रोड, लखनऊ

प्रो. अनुराग जोशी
राजनीति विज्ञान संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, मैदान गढ़ी,
इग्नू, नई दिल्ली – 110068

प्रो. एस. वी. रेड्डी
राजनीति विज्ञान संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ,
मैदान गढ़ी,
इग्नू, नई दिल्ली – 110068

प्रो. जगपाल सिंह
राजनीति विज्ञान संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ,
मैदान गढ़ी,
इग्नू, नई दिल्ली – 110068

पाठ्यक्रम निर्माण दलः

खण्ड और इकाइयां		इकाई लेखक
खण्ड 1	**परिचय**	
इकाई 1	भारत में राज्य राजनीति का विकास	प्रो. जगपाल सिंह, राजनीति विज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू मैदान गढ़ी, नई दिल्ली।
इकाई 2	विश्लेषण के दृष्टिकोण	प्रो. जगपाल सिंह, राजनीति विज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू मैदान गढ़ी, नई दिल्ली।
खण्ड 2	**संघवाद**	
इकाई 3	संघ–राज्य संबंध : विधायी, आर्थिक एवं प्रशासनिक	डॉ. डी. आनंद, ऐसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली
इकाई 4	राज्य–स्थानीय संबंध	डॉ. डी. आनंद, ऐसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली
इकाई 5	राज्य स्वायत्ता	डॉ. मंजरी राज आरॉओं, ऐसिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, बी बी ए यू, लखनऊ
इकाई 6	उप–क्षेत्रीय स्वायत्ता एवं शासन	डॉ. चाकाली ब्रहमैया, ऐसिटटेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान तथा मानव अधिकार विभाग, इंदिरा गांधी नेशनल ट्राइबल यूनिवर्सिटी, अमरकांटक, मध्यप्रदेश
खण्ड 3	**विकास और राज्यीय राजनीति**	
इकाई 7	राज्य विकास मॉडल	डॉ. सुधीर सुथार, ऐसिटटेंट प्रोफेसर, सेंटर फॉर पालिटिकल स्टडीज, जे. एन. यू., नई दिल्ली
इकाई 8	पलायन	डॉ. सिद्धार्थ मुकर्जी, ऐसिटटेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, बाला साहेब भीमराव विश्वविद्यालय लखनऊ, उत्तर प्रदेश
खण्ड 4	**दलीय व्यवस्थाऐं और चुनावी राजनीति**	
इकाई 9	राज्य दलीय व्यवस्थाऐं	प्रोफेसर अरूण कुमार जाना, राजनीति विज्ञान विभाग, नॉर्थ बंगाल, सिलीगुड़ी दार्जिलिंग तथा मौली डे, रिसर्च स्कॉलर, राजनीति विज्ञान विभाग, यूनिवसिटी ऑफ नार्थ बंगाल, सिलीगुड़ी, दार्जिलिंग।

इकाई 10	चुनावी राजनीति	डॉ. सुधीर सुथार, ऐसिटटेंट प्रोफेसर, सेंटर फॉर पालिटिकल स्टडीज, जे. एन. यू., नई दिल्ली
इकाई 11	नेतृत्व	अपर्ना विजयन, राजनीति विज्ञान संकाय, महाराजा सायाजिराव यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा, वदोदरा
खण्ड 5	**पहचान की राजनीति**	
इकाई 12	दलित, ओ.बी.सी. और महिलायें	डॉ. अरविंद कुमार, ऐसिटटेंट प्रोफेसर, सेंटर फॉर शोसल एक्लूजन एंड इंक्सलूसिव पालिसीज, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली
इकाई 13	भाषाई और नृजातीय समूह	प्रो. जगपाल सिंह, राजनीति विज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू मैदान गढ़ी, नई दिल्ली
इकाई 14	क्षेत्र और जनजाति	डॉ. शेल्जा सिंह, ऐसिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविधालय, दिल्ली
इकाई 15	नये सामाजिक समूह	यह इकाई, इकाई 15 तथा 16, एमपीएसई–007 तथा इकाई 11 बीपीएससी–132 पर आधारित है

पाठ्यक्रम संयोजकः

प्रो. जगपाल सिंह
राजनीति विज्ञान संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, मैदान गढ़ी,
इग्नू, नई दिल्ली – 110068

डॉ. डी. आनंद, ऐसोसिएट प्रोफेसर,
राजनीति विज्ञान संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, मैदान गढ़ी,
इग्नू, नई दिल्ली – 110068

मुख्य संपादक

प्रो. जगपाल सिंह
राजनीति विज्ञान संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, मैदान गढ़ी,
इग्नू, नई दिल्ली

अनुवादकः डॉ. गिर्राज प्रसाद बैरवा
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
राजधानी कालिज, दिल्ली विश्वविद्यालय
राजा गार्डन, नई दिल्ली–110015

मुद्रण प्रस्तुति

श्री राजीव गिरधर
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)
सामग्री निर्माण एवं वितरण विभाग, इग्नू

श्री हेमन्त परीदा
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन) सामग्री निर्माण
एवं वितरण विभाग, इग्नू

जुलाई, 2021

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2021

ISBN:

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्र मुद्रण) द्वारा अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी नई दिल्ली-110068 से अथवा इग्नू की आधिकारिक वेबसाइट www.ignou.ac.in से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ द्वारा मुद्रित और प्रकाशित ।

लेज़र टाइप सेट- टेसा मीडिया एण्ड कंप्यूटर्स

मुद्रण -

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

विषय–सूची

खण्ड 1	**परिचय**	**7**
इकाई 1	भारत में राज्य राजनीति का विकास	9
इकाई 2	विश्लेषण के दृष्टिकोण	18
खण्ड 2	**संघवाद**	**29**
इकाई 3	संघ–राज्य संबंध : विधायी, आर्थिक एवं प्रशासनिक	31
इकाई 4	राज्य–स्थानीय संबंध	44
इकाई 5	राज्य स्वायत्ता	57
इकाई 6	उप–क्षेत्रीय स्वायत्ता एवं शासन	69
खण्ड 3	**विकास और राज्यीय राजनीति**	**81**
इकाई 7	राज्य विकास मॉडल	83
इकाई 8	पलायन	94
खण्ड 4	**दलीय व्यवस्थाऐं और चुनावी राजनीति**	**105**
इकाई 9	राज्य दलीय व्यवस्थाएं	107
इकाई 10	चुनावी राजनीति	118
इकाई 11	नेतृत्व	127
खण्ड 5	**पहचान की राजनीति**	**139**
इकाई 12	दलित, ओ.बी.सी. और महिलायें	141
इकाई 13	भाषाई और नृजातीय समूह	154
इकाई 14	क्षेत्र और जनजाति	165
इकाई 15	नये सामाजिक समूह	178
ग्रंथ सूची		189

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

पाठ्यक्रम परिचय

इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य छात्रों को भारत में राज्य की राजनीति के तरीकों एवं उसकी कुछ विशेषताओं से अवगत कराना है। इस पाठ्यक्रम में 15 इकाईयाँ है जिन्हें पाँच खण्डों में समायोजित किया गया है। प्रथम खं डमें दो इकाइयाँ हैं। इकाई संख्या 1 राज्य की राजनीति की उत्पत्ति से संबंधित है जो कि भारत में क्षेत्रीय अध्ययन का भाग है। इकाई संख्या 2 राज्य राजनीति की अवधारणाओं के अध्ययन से संबंधित है। खंड 2 भारत में संघवाद के बारे में है। इसमें चार इकाईयाँ हैं। इकाई संख्या 3 से 6 तक। इकाई 3 का संबंध शक्तियों के विभाजन से है राज्य एवं केन्द्र के बीच विधायी, आर्थिक और प्रशासनिक संबंधों के बारे में। इकाई 4 राज्य एवं स्थानीय सरकार के बीच संबंधों के बारे में है। इकाई 5 एवं 6 राज्य की स्वायत्ता, उप–क्षेत्रीय स्वायत्ता तथा शासन की चर्चा करती है। खंड 3 का संबंध राज्य की राजनीति में विकास के सवाल से है। इसमें दो इकाईयां है, 7 और 8। इन दोनों इकाइयों का संबंध राज्य विकास को मॉडल एवं पलायन से है। खंड 4 दलीय व्यवस्था एवं चुनावी राजनीति के बारे में है। इसमें तीन इकाइयाँ है – 9, 10 एवं 11। जिनका संबंध राज्य दलीय व्यवस्था, चुनावी राजनीति तथा भारतीय राज्यों में नेतृत्व से संबंधित है। खंड 5 का संबंध पहचान की राजनीति के बारे में है। इसमें 4 इकाइयाँ है – 12, 13, 14 एवं 15। इकाई संख्या 12 का संबंध दलित, महिला एवं ओ.बी.सी. से है। इकाई संख्या 13, जनजातीय एवं भाषाई समूहों के बारे में है, इकाई संख्या 14 का संबंध क्षेत्र एवं जनजातियों से है तथा इकाई संख्या 15 नये सामाजिक समूहों जैसे कि मछुआरे, पर्यावरण आंदोलन एवं एल.जी.बी.टी.क्यू. समूहों के बारे में है।

सभी इकाइयों में अध्याय प्रश्न भी दिये गये है। इकाइयों को पढ़ने के बाद आप अपना उत्तर देने की कोशिश करें। प्रत्येक इकाई के अंत में अभ्यास प्रश्नों के उत्तर दिये गये है। आप अपने उत्तरों का अभ्यास प्रश्नों से मिलान इनसे कर सकते हैं। आप सावधान रहें तथा अपना उत्तर स्वयं की भाषा में लिखने की कोशिश करें। पाठ्यक्रम के अंत में कुछ संदर्भ दिये गये है। आप को सलाह दी जाती है कि आप इनका अध्ययन करें।

खण्ड 1
परिचय

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 1 परिचय

राज्य की राजनीति भारतीय राजनीति का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। वास्तव में, भारतीय राजनीति विभिन्न राज्यों की राजनीति में परिलक्षित होती है। राज्य की राजनीति स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विकसित हुई। इस खंड में कुल दो इकाइयाँ है। इकाई संख्या 1 ये बताने की कोशिश करती है कि किस प्रकार राज्य की राजनीति 1967 एवं 1969 के चुनावों के पश्चात् उभर कर सामने आई। इकाई संख्या 2 में विभिन्न अवधारणाऐं दी गई है जिसमें भारतीय राजनीति में राज्य की राजनीति को समझाया गया है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 भारत में राज्य राजनीति का विकास*

संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 परिचय

1.2 राज्य राजनीतिः 1950–1960 के दशक

1.3 क्षेत्रीत शक्तियों का उदय और राज्य राजनीतिः 1970 का दशक

1.4 राज्य राजनीतिः 1980 के दशक से

1.4.1 पहचान की राजनीति का उदय

1.4.2 भूमण्डलीकरण का प्रभाव

1.4.3 विद्रोह एवं राज्य राजनीति

1.5 संदर्भ

1.6 उपसंहार

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य भारत में राज्यों की राजनीति के विषय को समझना है। जैसा कि आपको पता है भारत में 28 राज्य और 8 केन्द्र शासित प्रदेश है। इन राज्यों की विभिन्न क्षेत्रीय, सामाजिक और राजनीतिक विशेषताऐं है। इनकी विशेषताएं राज्यों की राजनीति को परिलक्षित करती है। राज्यों की राजनीति का विषय विभिन्न राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों से संबंधित है। इसका संबंध विभिन्न राज्यों में राजनीतिक संगठनों को गठित करने और राजनीतिक लामबंदी की प्रक्रिया से है। इसका संबंध विभिन्न राज्यों में राजनीति की समानताओं एवं असमानताओं की चर्चा से भी है। यद्यपि राज्यों की राजनीति का विषय संबंधित राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों से संबंधित है, लेकिन सामान्यतया यह भारत में राज्य राजनीति के पाठ्यक्रम के अदंर आते हैं। राज्य राजनीति राष्ट्रीय राजनीति से कई मायनों में अलग है जैसे – राज्यों की राजनीति का संबंध केवल वहाँ कि राजनीति के स्तर के तरीकों तक सीमित है, जबकि राष्ट्रीय राजनीति का संबंध उन संस्थाओं की प्रक्रियाओं से है जो केन्द्रीय या अखिल भारतीय स्तर पर होती हैं। राज्य राजनीति से भिन्न, अखिल भारतीय अथवा राष्ट्रीय स्तर की राजनीति के सामान्य पैटर्न से संबंधित है। राष्ट्रीय राजनीति विभिन्न राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की राजनीति के समग्र चित्र को दर्शाती है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :–

- भारत में राज्यों की राजनीति के विकास की व्याख्या कर सकेंगे।
- राजनीतिक संगठनों के उदय की चर्चा कर सकेंगे।
- भारत में राजनीतिक परिवर्तन को राजनीतिक विकास के साथ जोड़कर देख सकेंगे।

---

* प्रो. जगपाल सिंह, राजनीति विज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली। यह इकाई एमपीएसई–008 की इकाई–1 का अनुकूलित रूप है।

1.1 परिचय

यह इकाई 1950 के दशक से राजनीति के प्रतिरूपों का चर्चा करती है। इस इकाई में जो मुद्दे शामिल है वो क्षेत्रीय और राष्ट्रीय राजनीति से संबंधित हैं। इसमें मुद्दों और समस्याओं, नेतृत्व के तरीके और राजनीतिक दलों की प्रक्रियाओं पर बल दिया गया है। इसका प्रमुख फोकस यह है कि एक अवधि में राज्य की राजनीति कैसे विकसित हुई है। स्वतंत्रता के बाद की अवधि में भारत में राज्य राजनीति के एक विशेष विषय रूप में विकसित हुईं। 1956 में हुए पुनर्गठन के बाद पहली बार भारतीय संघ के राज्यों की एक पहचान बनी। राज्यो को प्रमुख रूप से चार श्रेणियों ए.,बी.,सी.,डी. में बांटा गया था। लेकिन यह 1960 के दशक में राजनीति शास्त्रियों ने राज्य की राजनीति को एक विशेष विषय के रूप में देखने की जरूरत महसूस की।

1950 तथा 1960 के दशकों में अनेक राज्यों में निराशाजनक घटनाओं ने राजनीति के अध्ययन शास्त्रियों को विभिन्न राज्यों की राजनीति के लिए प्रेरित किया। भारत में राज्य की राजनीति को एक परिप्रेक्ष्य में रखने के प्रयास में मायरन वीनर की पहल से संयुक्त राज्य अमेरिका में – एक 1961 शिकागो विश्वविद्यालय में तथा दूसरा 1964 में मसाच्यूट इंटटीयूट ऑफ टैक्नोलोजी में दो सेमीनार आयोजित किये गये। सत्रह में से नौ राज्यों पर कार्य करने वाले विद्वानों जो उस समय भारत में मौजूद थे, ने इन निष्कर्षों को बाद में प्रस्तुत किया। पहले सेमीनार की रिपोर्ट जून 1961 में एसियन सर्वे में प्रकाशित हुई थी। 1964 की संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध पत्रों को पहली बार मायरन वीनर द्वारा संपादित पुस्तक *स्टेट पालिटिक्स इन इंडिया* (1968) में छपे। इसी तरह से इकबाल नारायण ने *स्टेट पालिटिक्स इन इंडिया* का संपादन 1976 में किया जो कि असम और जम्मू और कश्मीर सहित भारत में सभी राज्यों की राजनीति में शामिल करने का प्रयास था। बाद में 5 अगस्त 2019 को जम्मू कश्मीर और लद्दाख को अलग दो केन्द्र शासित बना दिया गया था। मायरन वीनर की पुस्तक सभी राज्यों को शामिल नहीं करती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राज्य की राजनीति में उल्लेखनीय परिवर्तन हुर्ए हैं। यह राष्ट्रीय राजनीति की परिधि से भारत की राजनीति में केन्द्र स्तर तक उभरा है। 1960 के दशक से लेकर आज तक केंन्द्र एवं राज्यों में गठबंधन सरकार के राज्य साझीदार बने हुए हैं। कई अवसरों पर राज्य स्तरीय राजनीतिक दल राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावित करते हैं तथा नीतियों को भी प्रभावित करते हैं। 1960 के दशक के पहले के राज्य स्तर के दल राष्ट्रीय राजनीति में दूसरा स्थान रखते थे। 1976 में प्रकाशित इकबाल नारायण की पुस्तक के पश्चात् राज्यों की राजनीति पर अनेक शोध कार्य प्रकाशित हो चुके हैं। इन शोध कार्यों में विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया गया जैसे कि इनमें दलित, ओ.बी.सी., सामाजिक आंदोलन, राज्य स्तर के नेता तथा राजनीतिक दल चुनाव इत्यादि। ये राज्य के अध्ययन में कुछ उदाहरण हैं। उनके अलावा अन्य मुद्दे भी ऐसे उदाहरणों में आते हैं। कुछ शोध कार्य एक या उससे अधिक राज्यों में राजनीति का अध्ययन करते है, कुछ विभिन्न राज्यों में राजनीति का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। *डोमिनेंस एण्ड स्टेट पावर इन माडर्न इंडिया तथा डिक्लाइन ऑफ सोशल ओर्डर* वाल्यूम 1 तथा 2 फ्रांसिस फ्रेंकल एवं एम. एस.ए. राव द्वारा संपादित की गई। ऐसी पुस्तक हैं जिनमें विभिन्न राज्य में राजनीति का अध्ययन किया गया है। ये वाल्यूम 1989 और 1990 में प्रकाशित हुए थे। इसमें राज्यों के सत्ता संबंधों में परिवर्तन की नीति राज्य की राजनीति में महत्वपूर्ण कारक बनी। इसी तरह *राइज़ ऑफ द् प्लेबियन? द चेंकिंग फेस ऑफ इंडियन लेजिसलेटिव*

अंसेम्बलीज (2009) में क्रिस्टोफ जैफरलो एवं संजय कुमार द्वारा संपादित पुस्तक है। यह स्तर राज्य स्तर की राजनीति में विभिन्न भारतीय विधान सभाओं के बदलते स्वरूप के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है।

1.2 राज्य राजनीतिः 1950–1960 के दशक

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रथम दो दशकों तक राज्य की राजनीति केन्द्र के प्रभाव में विकसित हुइ, जिसने राष्ट्र–निर्माण की आकांक्षा पर मुख्य जोर दिया। इस काल में, नेहरू का विकास मॉडल एवं काँग्रेस पार्टी का वर्चस्व भारत की राजनीति का प्रमुख केन्द्र था। राज्य राजनीति केन्द्रीय राजनीति का ही नमूना था। भारतीय राजनीति में केन्द्र सरकार का दबदबा था जबकि राज्य की राजनीति का स्थान दूसरा था। केन्द्र के निर्देशानुसार राज्य सरकारों ने कई महत्वपूर्ण योजनाओं को लागू किया जो कि राष्ट्र–निर्माण से संबंधित थी। इनमें भूमि सुधार, सामुदायिक विकास कार्यक्रम, आदि शामिल थे। काँग्रेस पार्टी की केन्द्र में सरकार थी तथा कई राज्यों में भी उसकी सरकारें थी। काँग्रेस के भीतर कई गुट थे जो राष्ट्रीय स्तर के कांग्रेसी गुटों के अनुबंध थे और वो राष्ट्रीय स्तर पर भी हमेशा दवाब बनाया रखना चाहते थे। केन्द्र तथा राज्यों में एक दल के वर्चस्व के कारण ऐसा लगता था कि राज्यों और केन्द्र में राजनीति का स्वरूप एक जैसा है। राज्यपाल जो कि केन्द्र द्वारा नियुक्त किए जाते थे, एक या दो अपवादों को छोड़कर विवाद के कारण बिंदु नहीं बने। इसमें कोई शक नहीं है कि यह एक प्रमुख पैटर्न था। लेकिन इसके साथ–साथ राज्य की राजनीति में भी आपसी असंतोष के प्रतिमान एक साथ उभरे। इन घटनाक्रमों ने राजनीति के मुख्य स्वरूप को चुनौती दी। यह स्वरूप था, राज्यों में कांग्रेस का वर्चस्व तथा क्षेत्रीय दलों की कमजोर स्थिति। स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्षों के भीतर उत्तर–पूर्व भारत में नागा और मिजो विद्रोह प्रारंभ हुआ। जम्मू और कश्मीर (जो 5 अगस्त 2019 तक एक राज्य था) में जनमत–संग्रह फ्रंट (plebiscite Front) आंदोलन प्रारंभ हुआ, तथा दक्षिण भारत में राज्यों के पुनर्गठन की माँग उठी। कांग्रेस से विभिन्न विचारधाराओं को मानने वाले दलों ने भी इस दौर में राज्यों की राजनीति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उत्तर भारतीय राज्यों, बिहार, उत्तर प्रदेश में जनसंघ, केरल और पश्चिम बंगाल में समाजवादियों और वामपंथियों ने पंजाब में अकाली दल ने एक–साथ कांग्रेस के खिलाफ विभिन्न मुद्दों पर लोगों को एकजुट किया। इन घटनाओं ने राज्य की राजनीति के स्वरूप की झलक दी, जो भारत में निकट भविष्य में उभरने वाली थी। महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में आर.पी.आई. (रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया) और महाराष्ट्र में दलित पेंथर, उत्तरी भारत में आर.एस.एस. (राष्ट्रीय सेवक संघ) तथा उनके सहयोगियों का गौ रक्षा आंदोलन तथा उत्तर भारत में समाजवादियों को हिन्दी भाषा के प्रसार, तमिलनाडु में हिन्दी भाषा लागू करने का विरोध मद्रास (अब चेन्नई)/तमिलनाडु के पृथक्करण की मांग महत्वपूर्ण घटनाएं थीं। ये नृजातीय आंदोलन के आयाम थे। नृजातिय राजनीति कुछ प्रारंभिक उदाहरण थे, मद्रास (अब चेन्नई)।

गुजरात और राजस्थान में रूढ़िवादी दलों जैसे स्वतंत्र पार्टी ने भी कांग्रेस के वर्चस्व को चुनौती दी। इन घटनाओं के कारण सेलिग हेरिसन ने 1950 के दशक को ''सबसे खतरनाक दशक'' कहा था। राज्य की राजनीति के प्रबल स्वरूप को कांग्रेस के भीतर से भी चुनौती दी गयी। कांग्रेस के भीतर गुटबंदी के नेता अपना–अपना सामाजिक आधार बनाने में पीछे नहीं रहे। कांग्रेस के सदस्य होते हुए भी उन्होंने अपने–अपने

राज्यों में अपने सामाजिक आकार को मजबूत किया। वास्तव में कांग्रेस में रहते हुए इन नेताओं ने अपने व्यक्तिगत सामाजिक आधार को सुदृढ किया। इसके कारण कांग्रेस में विभिन्न गुटों के नेताओं में आरोप–प्रत्यारोप हुए। इसका परिणाम गुट नेताओं के बीच आरोपों का आदान–प्रदान हुआ। चरणसिंह का उदाहरण यहां सबसे अधिक उपयुक्त है। उन्होंने कांग्रेस में रहते हुए मध्यमवर्गीय जातियों और पिछड़े वर्गों के भीतर अपने लिए एक आधार तैयार कर रखा था। उत्तर प्रदेश में कांग्रेस के विभाजन और उत्तर भारतीय राज्यों की राजनीति में एक शक्तिशाली क्षेत्रीय और ग्रामीण शक्ति के उद्भव के परिणामस्वरूप उत्तर भारतीय राज्यों की राजनीति में परिवर्तन देखने को मिला। इस पैटर्न की अभिव्यक्ति 1967 के आम चुनावों में कांग्रेस की पराजय के रूप में और 1969 में गठबंधन सरकार की स्थापना के रूप में हुई। उसने भारत संघ के राज्यों की राजनीति में एक नयी प्रवृत्ति का सूत्रपात किया।

1.3 क्षेत्रीय शक्तियों का उदय और राज्य राजनीति : 1970 का दशक

1960 वं 1970 के दशकों में राज्य की राजनीति के रूपों में परिवर्तन जवाहर लाल नेहरु के निधन की पृष्ठभूमि में हुआ। कांग्रेस व्यवस्था का पतन और इंदिरा गांधी के उत्थान के बाद व्यक्ति आधारित राजनीति का उदय हुआ। 1960 और 1970 के दशकों के अंत तक राज्य की राजनीति का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण ग्रामीण अमीरों या विशेष रूप से उन क्षेत्रों में उदय हुआ जिनमें हरित क्रांति हुई। इसके उदाहरण है : हरियाणा और पंजाब में जाट, बिहार में यादव एवं कुर्मी, आंध्र प्रदेश में काम्मा और रेड्डी तथा कर्नाटक में वोकालिगा और लिंगायत समुदायों के किसान। चरण सिंह ने मुख्य रूप से कृषि संबंधी एजेंडे पर ध्यान केन्द्रित करके भारतीय क्रांति दल का गठन किया। उन्होंने 1967 से 1987, दो दशक तक उत्तर भारत की राजनीति में एक मजबूत भूमिका के लिए नेतृत्व और मंच प्रदान किया। उनका बिहार और हरियाणा में राज्य स्तर के नेताओं के साथ इस अवधि के दौरान उत्तर भारत की राजनीति पर प्रभाव पड़ा। कई राज्यों में उत्तर प्रदेश की तर्ज पर अनेक क्षेत्रीय और खेतिहर वर्ग के मजबूत सामाजिक आधार वाले नेताओं का उदय हुआ। इन नेताओं और दलों ने क्षेत्रीय मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया और केन्द्र राज्य संबंधों में सुधार की मांग की। राज्यपाल की भूमिका, जिसे प्रमुख पार्टी के प्रति सहानुभूति का अहसास था। कांग्रेस पर प्रश्न उठाये जाने लगे और केन्द्र राज्य संबंधों में परिवर्तन की मांग उठने लगी। यह घटनाक्रम आगे आने वाले समय की राज्य की राजनीति में निर्णायक हो गया।

क्षेत्रीय नेताओं और राजनीतिक पार्टियों के बीच समन्वय की प्रक्रिया सुस्पष्ट हो गई। इन नेताओं में से कुछ राष्ट्रीय स्तर के नेता बने। इन नेताओं ने क्षेत्रीय/राज्य की राजनीति से प्रेरणा ग्रहण की तथा क्षेत्रीय राजनीतिक दलों को नेतृत्व किया। आपात काल के दौरान अनेक राज्यों और राष्ट्रीय नेताओं और दलों में कांग्रेस के खिलाफ एकजुट होने का मौका मिला। क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दलों ने मिलकर जनता पार्टी बनाई और केन्द्र तथा राज्यों में अपनी सरकारें बनाई। केन्द्र और राज्य दोनों ही जगह जनता पार्टी की सरकार ने जनता के लिए कई योजनाओं को लागू किया जिनकी प्रतिक्रिया राज्य की राजनीति पर हुई। मंडल आयोग की नियुक्ति और बिहार तथा उत्तर प्रदेश में पिछड़े वर्गों के लिये आरक्षण की शुरूआत ने राज्य और राष्ट्रीय राजनीति दोनों के लिए महत्वपूर्ण रूझान पैदा किये।

राज्य स्तरीय नेताओं और राजनीतिक दलों ने न केवल इंदिरा गाँधी के नेतृत्व और कांग्रेस के संगठन को चुनौती दी बल्कि केन्द्र और राज्य संबंधों में और मजबूत स्थान की मांग की। केन्द्र–राज्य संबंधों में संशोधन के लिये 1983 के अंत में सरकारिया आयोग का गठन किया गया जो कि 1960–1980 के दशक के महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक था। तमिलनाडु में राजमन्नार आयोग का गठन और पश्चिम बंगाल में वामपंथी सरकार का प्रस्ताव भी कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण है। इंदिरा गाँधी के नेतृत्व को 1970 के दशक में जे. पी. आंदोलन और गुजरात आंदोलन ने चुनौती दी। क्षेत्रीय शक्तियों, जे. पी. आंदोलन और इलाहाबाद उच्च न्यायलय के निर्णयों की चुनौतियों के सामने असमर्थ होकर इंदिरा गाँधी ने 20 महिने तक (1975–1979) आपात लगाया। आपातकाल के बाद क्षेत्रीय नेताओं जैसे चरण सिंह का राष्ट्रीय स्तर की राजनीति में प्रवेश हो गया। इसके साथ ही बिहार में कर्पूरी ठाकुर, हरियाणा में देवीलाल, उत्तर प्रदेश में राम नरेश यादव एवं बाद में मुलायम सिंह यादव जैसे राज्य स्तरीय नेताओं ने केन्द्रिय राजनीति में अपने कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने का प्रयास किया।

अभ्यास प्रश्न 1

नोटः i) उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का उपयोग करें।

ii) अपने उत्तर के सुझावों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रथम दो दशकों में भारतीय राज्य की राजनीति के प्रमुख लक्षण कौन–कौन से थे?

.....

.....

.....

.....

.....

2) कांग्रेस के प्रभुत्व या एक दलीय व्यवस्था के वर्चस्व का पतन क्यों हुआ?

.....

.....

.....

.....

.....

3) 1970 के दौरान राज्य राजनीति की प्रमुख विशेषताओं की पहचान कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.4 राज्य राजनीति : 1980 के दशक से

1.4.1 पहचान की राजनीति का उदय

1980 के दशक के बाद के घटनाक्रमों ने भारत की राजनीति में राज्यों की राजनीति के बदलते चरण और राष्ट्रीय राजनीति में राज्यों की भूमिका में योगदान दिया। ये घटनाक्रम इस प्रकार थे – राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर गठबंधन की राजनीति की बारंबारता, भूमण्डलीकरण, नयी पीढ़ी के नेतृत्व का उदय, जातीयता पर आधारित अनेक पहचानों की गतिविधियां जैसे जाति (दलित, और पिछड़े वर्ग) जनजाति, भाषा, किसान आंदोलन, उत्तर–पूर्वी राज्यों पंजाब तथा जम्मू एवं कश्मीर में विद्रोह तथा स्वायत्ता आंदोलन, इत्यादि। विभिन्न सामाजिक समूहों के आंदोलन को नये सामाजिक आंदोलन के रूप में जाना जाने लगे हैं। यद्यपि ये घटनाक्रम मुख्यतया राज्य नीतियों के परिणामस्वरूप सामने आऐ, परंतु पहले के समय की तुलना में ये विशिष्ट लक्षण थे।

हाल के समय में उत्तर भारत में दलितों और पिछड़े वर्गों की उस राजनीति मे योगदान दिया है जो बहुत पहले से दक्षिण भारत में विदित है। उत्तर भारत में दलितों का राजनीतिकरण बी.एस.पी. के रूप में हुआ तथा पिछड़े वर्गों का जनता दल के रूप में राजनीतिकरण हुआ। इसके साथ बिहार और उत्तर–प्रदेश में विभिन्न जातियों के गैर राजनीतिक मोर्चों ने राज्य राजनीति में नए आयाम जोड़े। इस अवधि में अमीर किसानों का उदय हुआ जिसमें यू.पी. और पंजाब में भारतीय किसान यूनियन, महाराष्ट्र में शेतकारी संगठन, गुजरात में खेद्यूत समाज और कर्नाटक में राज्य रायत संघ का उदय हुआ। इन समूहों का उदय 1970 के दशक में हुआ जब उन्हें उत्तर भारत और दक्षिण भारत में कुलक कहा गया। लेकिन 1970 के दशक और 1980 के दशक के रुझानों में अंतर था। जहाँ 1970 के दशक में कृषक हरित क्रांति और भूमि सुधार के उपज थे जो अपनी सत्ता में भागीदारी चाहते थे, वहीं 1980 के दशक में कृषक अन्य मुद्दो, जैसे बाजारी अर्थव्यवस्था से संबंधित मुद्दों को उठाते थे। नई सामाजिक शक्तियों ने विभिन्न राज्यों में कई माँगें उठाई। ये मांगें आरक्षण के मुद्दे, वहीं नये राज्यों के सृजन की मांग और केन्द्र से राज्यों तक संसाधनों का अधिक आवंटन के रूप में परिभिक्षित हुई।

1.4.2 भूमण्डलीकरण का प्रभाव

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के अंत में राज्य की राजनीति ने एक नया मोड़ लिया। भूमण्डलीकरण ने एक ओर केन्द्र की स्थिति को कमजोर बना दिया है दूसरी ओर इससे राज्य राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय शक्तियों को महत्वपूर्ण भागीदार बनाया। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) का सभी राज्यों पर एक भी प्रभाव नहीं पड़ा। कुछ राज्यों ने इसका लाभ उठाया है जबकि अन्य राज्य इससे पीछे रह गये हैं। वास्तव में उदारीकरण के कारण निवेश की मांग करनेके लिये राज्यों के बीच प्रतिस्पर्धा हो रही है। कुछ विशेषज्ञों के अनुसार कि भूमण्डलीकरण ने राज्यों में असमानता पैदा कर दी है। कुछ राज्य अधिक विकसित हो गये हैं जबकि कुछ राज्य अधिक पिछड़ गये हैं। लोरंस सेज की पुस्तक ''फेडरेलिज्म विदाउट ए सेंटर'' के अनुसार भूमंडलीकरण ने राज्यों को स्वतंत्र संस्थाओं के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाया है, ताकि वे अपना एजेंडा पर आगे बढ़ सकें। अब राज्य प्रत्यक्ष तौर पर अंतर्राष्ट्रीय डोनर्स के साथ समझौता कर सकते हैं तथा विभिन्न एजेन्सियों के साथ समझौता कर सकते हैं।

लेकिन ये सब केन्द्र सरकार की अनुमति के बाद ही कर सकते हैं। ऐसा भूमण्डलीकरण के पूर्व चरण में संभव नहीं था। भूमंडलीकरण अंतर–राज्यीय संस्थाओं के पतन का भी कारण बना। सेज का मानना है कि अंतर–शासकीय सहयोग ने ''अंतर–अधिकार क्षेत्र प्रतियोगिता'' (inter-jurisdictional competetion) को बढ़ावा दिया है।

भूमंडलीकरण के चरण में दलीय व्यवस्था में भी बदलाव देखने को मिला है। अधिकांश राज्यों में, दो या दो से अधिक दलों का उदय एक प्रमुख दल के रूप में हुआ है। राज्य स्तरीय दल किसी विशेष क्षेत्र, धर्म या जाति की तरफ झुके होते हैं। ये गठबंधन–मार्चे चुनावों से पहले तथा चुनावों के बाद गठबंधन, में भी अपना प्रभाव डालते हैं, गठबंधन करके सरकार भी बनाते हैं। इसमें सबसे प्रमुख उदाहरण इस प्रकार है : बहुजन समाज पार्टी जिसका प्रमुख आधार उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा मध्य प्रदेश में है; समाजवादी पार्टी, अकाली दल, राष्ट्रीय लोक दल उत्तर भारतीय राज्यों में, बीजू–जनता दल पूर्वी भारत में तथा दक्षिण भारत में, तेलगू देशम पार्टी, ए.आई.ए. डी.एम.के. तथा डी.एम.के. दक्षिण भारत में शिव सेना नेशनेलिस्ट कांग्रेस पार्टी महाराष्ट्र में इत्यादि। उत्तर–पूर्व में भी कुछ क्षेत्रीय दल सक्रिय है।

राजनीतिक दलों की भूमिका मुख्य तौर पर चुनाव में लोगों को एकजुट करने की होती है। लेकिन नयी शक्तियों के उभरने जैसे दलित, पिछड़ा वर्ग, के बाद गैर चुनावी लामबंदी को बढ़ावा मिला है। ये सब बाद में चुनावों में भी भूमिका निभाते हैं। राजनीतिक और सामाजिक शक्तियों का प्रसार राज्य की राजनीति पर किसी एक शक्ति को हावी होने नहीं देता, लेकिन साथ ही वे सभी राजनैतिक सत्ता में हिस्सा लेना चाहते हैं। हालांकि गठबंधन के आधार पर सत्ता और विपक्ष दोनों के राजनीतिक मोर्चों पर राजनीतिक प्रभाव पड़ता है, लेकिन इसका मुख्य कारण व्यावहारिक और राजनीतिक मुद्दों पर आधारित होता हैं।

1.4.3 विद्रोह एवं राज्य राजनीति

इस इकाई में अब तक चर्चा किये गये मुद्दों के अलावा उग्रवाद और इससे जुड़े मुद्दे भी कई राज्यों की राजनीति विशेषकर 1980 के दशक का पंजाब, उत्तर–पूर्व भारत तथा जम्मू और कश्मीर (जिसे अगस्त 5, 2019 को दो केन्द्र शासित प्रदेशों जम्मू एवं कश्मीर तथा लद्दाख में विभाजित किया गया) में प्रमुख स्थान रखते है। इन घटनाक्रमों ने न केवल राज्यों की राजनीति पर गंभीर असर डाला बल्कि इन्होंने देश की राष्ट्रीय राजनीति पर भी गंभीर असर डाला है। उग्रवाद की समस्याऐं विकास, अंतर्राजातीय संबंधों, स्वायत्ता या आत्मनिर्णय के मुद्दों से जुड़ी है। उग्रवाद की दिशा राष्ट्र राज्य या उसके प्रतिनिधियों के विरुद्ध होती है परन्तु अनेक उदाहरणों में यह नृजातीय दंगों में परिवर्तित जाती है तथा नृजातीय दंगे विभिन्न नृजातीय समूहों के बीच होते है। विद्रोह की समस्या भारत के लिये नई नहीं है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारत को स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद उत्तर–पूर्व भारत में नागा तथा मिजो उग्रवाद जैसे समस्याओं का सामना करना पड़ा। इसके साथ जम्मू और कश्मीर में जनमत संग्रह तथा दक्षिण भारत में भाषाई आंदोलन इत्यादि इन समस्याओं में प्रमुख उदाहरण है। जहाँ एक ओर 1970 के दशक तक राज्य स्तर के नेताओं और दलों के उदय ने प्रमुख पार्टी प्रणाली को चुनौती दी, दूसरी ओर विद्रोही आंदोलनों ने केंद्र के समांगी करने (homogenising) वाले दृष्टिकोण पर प्रश्न चिन्ह लगाया। समांगीकरण का दृष्टिकोण राष्ट्र–निर्माण (Nation-building) पर बल देता है तथा इसने एक

वैकल्पिक दृष्टिकोण ''संघीय–निर्माण दृष्टिकोण'' (fedration-building approach) का समर्थन किया। कुछ मामलों में, विद्रोह स्वायत्ता या बाहरी लोगों के खिलाफ असहयोग का सह–उत्पादक होता है। इस प्रक्रिया में नये समूह स्वायत्ता या आत्म–निर्णय की मांग करते हैं। उत्तर–पूर्व में कुछ उदाहरण हैं जैसे कि असम में उल्फा, बोडो, कार्बी, लोग आसू (ऑल आसाम स्टूडेंट यूनियन) आंदोलन में सहभागी थे। एक समय बोडो तथा कार्बी आसू आंदोलन में भाग लिया था। बाद इन समूहों को लगा कि उनकी उपेक्षा की गई। इस कारण उन्होंने भारतीय संघ में रहकर स्वायत्ता की मांग की।

अभ्यास प्रश्न 2

नोटः i) उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का उपयोग करें।

ii) अपने उत्तर के सुझावों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) भारत में राज्य की राजनीति पर पहचान के प्रभाव को समझाइये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में भूमण्डलीकरण और राज्य के बीच किस प्रकार के संबंध हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.5 संदर्भ

फ्रांसिन आर. फ्रेंकल एण्ड एम.एस.ए. राव (1989) – डोमिनेंस एण्ड स्टेट पॉवर इन मॉडर्न इंडिया : डिक्लाइन ऑफ सोशल आर्डर, वो. 1, ओ.यू.पी. दिल्ली।

फ्रांसिन आर. फ्रेंकल एण्ड एम.एस.ए. राव (1990) – डोमिनेंस एण्ड स्टेट पॉवर इन मॉडर्न इंडिया : डिक्लाइन ऑफ सोशल आर्डर, वो. 2, ओ.यू.पी. दिल्ली।

जैफ़रलो, क्रिस्टोफ, कुमार संजय (2009) राइज़ ऑफ द प्लेबियंस? द चेंजिंग फेस ऑफ इंडियन लेजिसलैंगि असेम्बली, राउटलेटिव, नई दिल्ली।

सेज, लोरंस (2002) फेडरेलिज़्म विदाउट ए–सेंटर, द इंफैक्ट ऑफ पोलिटिकल एण्ड इकोनोमिक रिफोर्म ओन इंडियाज फेडरल सिस्टन, सेज प्रकाशन, दिल्ली।

वीनर, मायरन, (1968) स्टेट पोलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

1.6 सारांश

भारत में राज्य की राजनीति कई चरणों में विकसित हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग दो दशक बाद राज्य की राजनीति में महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिले हैं। राज्य राजनीति में राष्ट्रीय पैटर्न मिलते है। 1950 तथा 1960 (अधिकतर समय में) के दशकों में वक्त कांग्रेस अकेली पार्टी थी जिसका संपूर्ण भारत में प्रभुत्व था। उसकी केन्द्र एवं राज्य दोनों में सरकारें थी। लेकिन 1960 दशक के अंत में कांग्रेस का पतन शुरू हुआ। उसे 1967 के आम चुनावों में, हार का सामना करना पड़ा। तथा कई राज्यों में गैर–कांग्रेस पार्टियों की सरकार बनी। कुछ क्षेत्रीय नेताओं और दलों का उदय हुआ। इसका प्रमुख कारण था कांग्रेस के भीतर गुटबाजी एवं विपक्षी दलों का 1960 और 1970 के दशकों में जनता को एकजुट करना। आपातकाल ने भी इन नेताओं को एक साथ आने का असवसर प्रदान किया।

1980 के दशक तक जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा के आधार पर पहचान की राजनीति का उदय हुआ तथा नये नेताओं का उदय हुआ, जिनका आधार क्षेत्रीय पहचान थी। उसके बाद भूमण्डलीकरण ने राज्य–राष्ट्र राजनीति की दिशा को मोड़ दिया और उसने राज्यों को केन्द्रिय पटल पर उभरने का मौका दिया। राज्यों में गठबंधन की सरकारें भी बनने लगी। यह 1990 के दशक से पहले संभव नहीं था। इसलिए, हम कह सकते हैं कि राज्य की राजनीति राष्ट्रीय स्तर पर काफी बदल चुकी है। अब राज्य पहले की तरह केन्द्र के अंध–समर्थक नहीं रहे।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) प्रथम दो दशकों तक राज्य राजनीति के चरित्र केन्द्र और राज्य में कांग्रेस के प्रभुत्व से इंगित होती थी तथापि कांग्रेस पार्टी के अंदर गुटबाजी जोरों पर थी। राज्य की राजनीति केन्द्र का ही एक नमूना थी। इस काल में कांग्रेस पार्टी ने नेहरूवादी विकास के मॉडल को लागू किया था जिसका प्रमुख लक्ष्य राष्ट्र–निर्माण था।

2) काँग्रेस पार्टी के पतन के मुख्य ये कारण थे कांग्रेस का जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने में नाकाम रहना। कांग्रेस के भीतर गुटबाजी का चरम सीमा पर होना तथा गैर कांग्रेसी दलों द्वारा लोगों को कांग्रेस की असफलता के विरूद्ध लामबंद करना।

3) 1970 के दशक में राज्य राजनीति की विशेषताएं थीः कांग्रेस व्यवस्था का पतन, कांग्रेस का व्यक्तिकरण, हरित–क्रांति प्रभावित क्षेत्रों में अमीर किसानों क्षेत्रीय दलों तथा हरित क्रांति प्रभावित क्षेत्रों मेंनए नेताओं और दलों का उदय।

अभ्यास प्रश्न 2

1) पहचान की राजनीति के प्रभाव के कारण क्षेत्रीय अपेक्षाऐं राज्यों में बढ़ने लगी। नये नेतृत्व, मुद्दों एवं नये संगठनों का जन्म इसके प्रतीक है।

2) भूमण्डलीकरण ने विभिन्न राज्यों में एफ.डी.आई. को आकर्षित करने का काम किया। इसके प्रभाव के कारण राज्यों को अंतर्राष्ट्रीय कर दाताओं के साथ बातचीत करने का मौका मिला।

इकाई 2 विश्लेषण के दृष्टिकोण*

सरंचना

2.0 उद्देश्य

2.1 परिचय

2.2 व्यवस्थित दृष्टिकोण

2.3 मार्क्सवादी दृष्टिकोण

2.3.1 शास्त्रीय मार्क्सवादी दृष्टिकोण

2.3.2 नव–मार्क्सवादी दृष्टिकोण

2.4 उत्तर–आधुनिक दृष्टिकोण

2.5 संघ–निर्माण दृष्टिकोण

2.6 सामाजिक–पूंजी दृष्टिकोण

2.7 चुनावों का अध्ययन करने के लिये दृष्टिकोण

2.8 संदर्भ

2.9 सारांश

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

राजनीति एक व्यापक विषय है। कई संस्थाऐं, संगठन, प्रक्रियाऐं और मुद्दे हैं जो राजनीति से जुड़े हुए हैं। राजनीति के क्षेत्र की व्यापकता के कारण इसकी व्याख्या करना कठिन हो जाता है। राजनीति तेजी से बदलने वाली प्रक्रिया है। ऐसी परिस्थिति में राजनीति को समझने का प्रयास कठिन हो जाता है। सवाल यह उठता है कि राजनीति के किन पहलुओं का अध्ययन किया जाये। उनका अध्ययन कैसा होना चाहिए। इस समस्या का समाधान तभी किया जा सकता है जब हमारे पास राजनीति का अध्ययन करने का कोई तरीका मौजूद हो जिससे यह पता चले कि हमें राजनीति का अध्ययन किस तरह से करना चाहिए। राजनीति के अध्ययन में किन मुद्दों को प्राथमिकता देनी चाहिए। इन तरीकों को ही हम फ्रेमवर्क अथवा दृष्टिकोण कहते हैं। किसी दृष्टिकोण के बिना वास्तविकता को समझने का कोई भी प्रयास अंधेरे में तलाश करने के जैसा है। इस प्रकार इन दृष्टिकोणों को राज्य राजनीति के विश्लेषण के लिए प्रयोग किया जाय तो उन्हें राज्य राजनीति के विश्लेषण के दृष्टिकोणों के रूप में देखा जा सकता है। इस इकाई में आप भारत की राज्य की राजनीति को समझने के विभिन्न दृष्टिकोणों के बारे में पढ़ेंगे। इस इकाई के पढ़ने के बाद आप यह कर सकेंगे:

- राज्य की राजनीति को समझने के लिये विभिन्न दृष्टिकोणों का वर्णन;
- दृष्टिकोणों को प्रयोग करने की जरूरत को रेखांकित;
- राज्य–राजनीति के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोणों की तुलना।

---

* प्रो. जगपाल सिंह राजनीति विज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली। यह इकाई एमपीएसई–008 की इकाई 2 का अनुकूलित रूप है।

2.1 परिचय

जैसा कि आपने इकाई 1 में पढ़ा होगा भारत में राज्य की राजनीति का विकास छः दशकों से ज्यादा में नये मुद्दों, प्रक्रियाओं ताकि शक्तियों के उदय के साथ हुआ है। इन बदलावों ने राज्य की राजनीति को अलग पहचान दी तथा विद्वानों को भी अध्ययन करने की तरफ ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने राजनीति वैज्ञानिकों के राज्य राजनीति के अध्ययन के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों का प्रयोग किया। इसी प्रकार के दृष्टिकोणों का उपयोग विभिन्न स्तरों पर राजनीति के अध्ययन में किया गया जैसे राष्ट्रीय स्तर, राज्य या स्थानीय स्तर पर। दृष्टिकोणों का वर्गीकरण सामान्यतया इसके स्तर के अनुसार पहचाना जाता है।

2.2 व्यवस्थित दृष्टिकोण

व्यवस्थित दृष्टिकोण उन दो दृष्टिकोणों में से एक है जिसका प्रयोग राज्य की राजनीति के विश्लेषण में किया जाता है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण भी इस प्रकार का एक दृष्टिकोण है जिसे आप अगले अनुभाग में अध्ययन करेंगे। व्यवस्थित दृष्टिकोण एक प्रकार से अपने कार्यात्मक–प्रकार्यात्मक या आधुनीकरण और विकाससील दृष्टिकोण के रूप में जाना जाता है। 1970 के दशक तक ये दोनों दृष्टिकोण प्रमुख थे। जैसा कि आप इस इकाई में अध्ययन करेंगे, बाद के काल में भी कुछ दृष्टिकोणों भी राज्य राजनीति के अध्ययनों में प्रयोग में आए। लेकिन ये दोनों दृष्टिकोण को किसी ने किसी प्रकार से उपयोग में आते रहे। इन दोनों के बाद विकसित होने वाले दृष्टिकोण एक से अधिक दृष्टिकोणों के मिश्रण से विकसित हुए। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने एक ही समय में दृष्टिकोण का प्रयोग किया है।

आइये हम व्यवस्थित दृष्टिकोण के साथ शुरूआत करें। सामाजिक विज्ञान के व्यवहारवादी आंदोलन के एक भाग के रूप में राजनीतिक वैज्ञानिकों ने राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन और व्यवस्था के अध्ययन के लिये इस दृष्टिकोण को अपनाया। मूलरूप से अमेरिका में विकसित इस दृष्टिकोण का उपयोग उन देशों की राजनीति का अध्ययन करने के लिये किया जा गया जो औपनिवेशिक शासन से मुक्त हो चुके है। 1960 में देशों जी. ए. आलमंद और जे. एस. कोलमेन द्वारा सम्पादित पुस्तक– *द पॉलिटिक्स ऑफ डवलेविंग एरियाज* के छपने के बाद यह दृष्टिकोण बहुत लोकप्रिय बना। व्यवस्थित दृष्टिकोण की मुख्य विशेषताऐं इस प्रकार हैं।

राजनीतिक गतिविधियों की व्याख्या राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा के द्वारा की जा सकती है। राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक संस्थाऐं, संरचनाऐं और प्रक्रियाऐं शामिल है। विभिन्न संस्थाऐं आपस में संवाद और तालमेल बनाये रखते हैं और आपस में संतुलन बनाने की कोशिश करते हैं। प्रक्रियाऐं सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में घटित होती है तथा तालमेल बनाए रखते हैं तथा व्यवस्था टूटती नहीं है। इस प्रकार राजनीतिक व्यवस्था लचीली होती है जो परिस्थिति के अनुसार ढल जाती है, परन्तु टूटती नहीं। भारतीय राजनीति के अध्ययन के लिये अनेक राजनीतिक वैज्ञानिकों ने व्यवस्थित दृष्टिकोण अपनाया है। इसका उपयोग दोनों राष्ट्रीय स्तर की राजनीति और राज्यों की राजनीति के अध्ययन करने के लिये किया जाता है। अखिल भारतीय राजनीति के अध्ययन में रजनी कोठारी की पुस्तक *''पालिटिक्स इन इंडिया''* मुख्य पुस्तक है। विभिन्न विद्वानों ने राज्य राजनीति के अध्ययन के लिए व्यवस्थित

दृष्टिकोण का उपयोग एक या एक अधिक राज्यों में अध्ययन के लिए किया है। उन्होंने इस दृष्टिकोण द्वारा राज्य राजनीति के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया है। इन पहलुओं में मुख्यतः राजनीतिक दल, दल के भीतर मतभेद, जाति, धर्म, भाषा, नेतृत्व, चुनाव, दवाब समूह आदि शामिल है। इन पहलुओं को राजनीतिक व्यवस्था के उपतंत्र के रूप में भी माना जाता था। इनमें सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे राजनीतिक दल एवं जाति हैं। पॉल बास और रिचर्ड सिसन ने क्रमशः उत्तर प्रदेश और राजस्थान में कांग्रेस का अध्ययन इस दृष्टिकोण का प्रयोग करके किया है। रिचर्ड सिसन ने कांग्रेस के संस्थानीकरण – आधुनिक संस्थान जैसे राजनीतिक दलों और परंपरागत संस्था, जाति प्रथा के बदलाव का अध्ययन किया है। रजनी कोठारी ने कांग्रेस व्यवस्था की अवधारणा को प्रतिपादित किया। उनके अनुसार कांग्रेस ने इसमें गुटवाद के साथ तालमेल बिठाने में लचीलापन दिखाया था। ये व्यवस्थित दृष्टिकोण के प्रयोग के कुछ उदाहरण है।

समाजशास्त्रियों की तरह राजनीतिक वैज्ञानिकों का भी ध्यान जाति के अध्ययन के लिए आकर्षित हुआ। विकासशील या पारंपरिक समाज को समझने के लिये उन्होंने आधुनिकता और परंपराओं के बीच परस्पर संबंधों की प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया। आधुनिकता की पहचान आधुनिक राजनीतिक संस्थानों और प्रक्रियाओं का अभिप्राय थाः चुनी हुई सरकार, राष्ट्र–राज्य, आनुधिक नेतृत्व, वयस्क मताधिकार राजनीतिक दल, चुनाव आदि हैं, और परंपरा के नाम से जाति, धर्म–जनजाति आदि अभिचिन्हित किया गया। राजनीतिक दलों एवं चुनावों का अध्ययन करते समय रजनी कोठारी ने यह दलील दी कि, राजनीति और जाति के बीच संपर्क दो तरफा प्रक्रिया है। जाति और राजनीति दोनों एक दूसरे को बदलते हैं। इस प्रक्रिया में अब जाति, परंपरागत या क्रिया कांडों से संबंधित भूमिका नहीं निभाती बल्कि यह अब धर्म–निरपेक्ष हो गई है। मायरन वीनर द्वारा संपादित पुस्तक *'स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया'* के अंतर्गत विभिन्न शोधकत्ताओं ने विभिन्न राज्यों में राजनीति के महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान दिया। ये पहलू हैं : सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश, राजनीतिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण और राज्य सरकारों का प्रदर्शन। सामाजिक और आर्थिक परिवेश को अध्ययन करने के लिये सामाजिक संबद्धता के मुद्दे (जाति, धर्म, भाषा आदि), आर्थिक दृष्टिकोण, शहरी–ग्रामीण विभाजन; राजनीतिक प्रक्रिया का विवरण जो राजनैतिक दलों के साथ किया जाता है (विशेषकर कांग्रेस के अंदर गुटवाजी), हित समूह, नेतृत्व का तरीका एवं सार्वजनिक नीति पर विवाद; तथा सरकार का मूल्यांकन (मुख्य रूप से माल और सेवाओं के वितरण के आधार पर) है। विद्वानों ने इस मुद्दों पर अलग–अलग बल के साथ किया। लेकिन उन सबके के लिए विश्लेषण व्यवस्थित दृष्टिकोण सामान्य रहा है।

इकबाल नारायण द्वारा संपादित पुस्तक *''स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया'* में विभिन्न राज्यों की राजनीति के लिए व्यवस्थित दृष्टिकोण का प्रयोग किया गया है। इस पुस्तक में विश्लेषकों ने राज्य राजनीति के संदर्भ में विभिन्न पहलुओं का विशेषण किया है। इस संदर्भ में इतिहास, राज्यों को राजनीतिक दर्जा, राज्यों की राष्ट्रीय आंदोलन में भूमिका, जातियों और धार्मिक संगठनों का गठन, तथा आर्थिक विकास स्तर, एवं शिक्षित वर्ग की भूमिका शामिल हैं। इन निर्धारकों के स्तरों या उनके संदर्भ में अंतर–राज्य की राजनीति में अंतर परिलक्षित होते हैं। इन मतभेदों के बावजूद, इन अध्ययनों में विश्लेषण का सामान्य दृष्टिकोण व्यवस्थित विश्लेषण है।

व्यवस्थित दृष्टिकोण की विभिन्न प्रकार से आलोचना हुई है। इसकी सबसे कठोर आलोचना मार्क्सवादी विद्वानों ने की है। उनका तर्क है कि व्यवस्थित दृष्टिकोण राजनीति में वर्ग की भूमिका को अनदेखा करता है। यह राजनैतिक प्रक्रियाओं में इतिहास का महत्व कम कर देता है। यह राज्य की अवधारणा के स्थान पर राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा को महत्ता देता है और व्यवस्थित दृष्टिकोण एक देश की आंतरिक राजनीति को राजनीति में साम्राज्यवाद जैसी बाहरी ताकतों के प्रभाव से नहीं जोड़ता। इस दृष्टिकोण के आलोचक तर्क देते हैं कि व्यवस्थित दृष्टिकोण मूलतः परिवर्तन विरोधी है और यर्थाथस्थिति बनाये रखने की कोशिश करता है।

2.3 मार्क्सवादी दृष्टिकोण

मार्क्सवादी दृष्टिकोण राजनीति का विश्लेषण वर्गीय संबंधों या सामाजिक संबंधों तथा उत्पादन की शक्तियों के आधार पर करता है। यह राजनीति को वर्ग संबंध का प्रतिबिम्ब समझता है। इसके अनुसार राजनीति समाज में आर्थिक संबंधों द्वारा निर्धारित होती है। राजनीतिक संस्थाऐं तथा राज्य वर्गीय संबंधों का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा वर्ग विभाजित समाज में वे उच्च वर्गों के हितों को पूरा करती है। व्यवस्थित दृष्टिकोण के विपरीत मार्क्सवादी दृष्टिकोण राजनीति को विकसित देशों के साम्राज्यवादी संबंधों के साथ मिलाकर देखती है। साम्राज्यवाद विकासशील देशों में राजनीति को प्रभावित करता है। अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई. एम.एफ.) तथा साम्राज्यवाद विकासशील देशों की राजनीति नियंत्रित करते हैं। ये संस्थाएं विकासशील देशों पर अपनी शर्तें लगाती हैं। इन शर्तों के परिणामस्वरूप, विकासशील देशाों में राज्य अपनी नीतियां निर्धारित करते हैं तथा ये नीतियां आम लोगों पर विपरीत असर डालती है। लोगों का आक्रोश इन नीतियों के खिलाफ बढ़ता है जो शासक वर्गों के खिलाफ़ वर्ग संघर्ष का रूप ले लेता है। व्यवस्थित दृष्टिकोण के विपरीत, मार्क्सवादी दृष्टिकोण राजनीति को इतिहास साथ जोड़कर देखता है। यह सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थ को जानने के लिये द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को लागू करता है। यह द्वंद्वात्मक भौतिकवाद ही ऐतिहासिक भौतिकवाद के रूप में जाना जाता है। यह महत्वपूर्ण है कि व्यवस्थावादी दृष्टिकोण के मुकाबले, मार्क्सवादी दृष्टिकोण अधिक अंतरविषयी होता है। मार्क्सवादी विचारकों में आर्थिक तथ्यों या वर्ग की भूमिका को लेकर काफी मतभेद भी दिखाई देते हैं। इन मतभेदों के प्रकाश में, मार्क्सवादी संरचना दृष्टिकोण को दो भागों में विभाजित की गई है – शास्त्रीय तथा नव–मार्क्सवादी दृष्टिकोण।

2.3.1 शास्त्रीय मार्क्सवादी दृष्टिकोण

कॉम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो में उल्लिखित मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार अर्थव्यवस्था राजनीति की तुलना में अति निर्धारित (over dethmining) भूमिका अदा करती है। इस संदर्भ में अर्थव्यवस्था आधारशिला, और राजनीति अधिसंरचना होती है। मार्क्स और ऐंजिल्स ने 18वीं *ब्रूमेयर ऑफ लूई बोनापार्ट* में इस धारणा को संशोधित किया। संशोधन के अनुसार कि आधार अधिसंरचना को निर्धारित करता है, परन्तु अतिनिरोधक के रूप में नहीं। बल्कि अतिसंरचना की सापेक्ष स्वायत्ता होती है। अर्थात आधार अतिसंरचना को निर्धारित करता है, अंत में परन्तु अतिसंरचना की सापेक्ष स्वायत्ता ही जाती है। अब वे यह मानते थे कि अधिसंरचनाऐं हमेशा आधार पर निर्धारित नहीं

होती। इनकी सापेक्ष स्वायतता होती है। किन्तु अंतिम विश्लेषण में वह आधार है जो अधिसंरचना का निर्धारित करता है। इस प्रकार से राजनीति की सापेक्ष स्वायत्ता है।

व्यवस्थित दृष्टिकोण की तरह, शास्त्रीय मार्क्सवादी दृष्टिकोण का उपयोग राजनीति और राष्ट्रीय और राज्य स्तरों के अध्ययन के लिये भी किया गया है। मार्क्सवादी पद्धति के अनुसार भारत की स्वतंत्रता के बाद के काल के शास्त्रीय मार्क्सवादी दृष्टिकोण को अपनाने वाली पुस्तकों में चार्ल्स वेटलहेम की *''इंडिया इडिपेंडेंट''* तथा अचिन वनायक की पुस्तक *'इडियाज बुर्जुआ डेमोक्रेसी* के नाम प्रमुख हैं। शास्त्रीय मार्क्सवादी विश्लेषण का प्रमुख प्रयोग कृषि आंदोलनों, कृषि संबंधों और भूमि सुधार तथा श्रमिक संघ के आंदोलनों का अध्ययन करने के लिये हुआ है।

शास्त्रीय मार्क्सवादी दृष्टिकोण की गैर–आर्थिक कारकों की तुलना में आर्थिक कारकों को अनुचित महत्व देने के लिये आलोचना की जाती है। शास्त्रीय मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुयायी इस आरोप का प्रतिवाद करते हैं। उनके अनुसार मार्क्सवादी दृष्टिकोण राजनीति की स्वायत्ता को इस तर्क के साथ स्वीकार करता है कि अंत में वर्ग ही राजनीति का निर्धारण करता है। व्यवस्थित दृष्टिकोण के अनुयायी जाति की भूमिका में वर्ग की भूमिका से अनदेखा करते हैं।

2.3.2 नव–मार्क्सवादी दृष्टिकोण

वह मार्क्सवादी अवधारणा जो गैर–आर्थिक कारकों जैसे संस्कृति, राजनीति के विश्लेषण की चेतना और अन्य मुद्दों पर उचित बल देते हैं, नव–मार्क्सवादी अवधारणा के रूप में जानी जाती है। नव–मार्क्सवादी अवधारणा ग्राम्शी, फ्रैंक्फर्ट स्कूल और रॉफ मिलिवैण्ड के प्रभाव के परिणामस्वरूप उभर कर सामने आई थीं। ग्राम्शी का प्रभाव सबार्ल्टन स्कूल में सबसे अधिक देखा जा सकता है। रणजीत गुहा द्वारा प्रतिपादित सबलटर्न स्कूल का आधुनिक भारतीय इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान हैं। सबार्ल्टन स्कूल के अनुयाइयों का मानना है कि सामान्य लोगों में स्वयं की चेतना जगाने की क्षमता होती है। इसके लिए किसी बाहरी एजेन्सी की आवश्यकता नहीं होती है। फ्रेकफर्ट स्कूल के मानने वाले विद्वान जैसे अल्थूजर, कोलाकोस्की, पोलांजा इत्यादि विद्वानों ने शास्त्रीय मार्क्सवादी अवधारणा द्वदमात्मक भौतिकवाद आलोचना की थी।

अभ्यास प्रश्न 1

नोटः i) उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का उपयोग करें।

ii) अपने उत्तर के सुझावों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) राज्य की राजनीति को जानने के लिये व्यवस्थित दृष्टिकोण के प्रयोग की चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) मार्क्सवादी दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषताओं की पहचान कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 उत्तर–आधुनिक दृष्टिकोण

जैसा कि आपने इकाई संख्या एक में पढ़ा होगा, भारत में कई प्रकार सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक परिवर्तन हुए हैं। ये परिवर्तन भूमंडलीकरण, लोकतंत्रीकरण, विकेन्द्रीकरण एवं जाति आधारित पहचान के उत्थान धर्म, जातियता तथा नये सामाजिक आंदोलनकों द्वारा इंगित होते हैं। ये घटनाक्रमों का विभिन्न दृष्टिकोणों जैसे व्यवस्थावादी या मार्क्सवादी द्वारा अध्ययन किया गया है। कुछ विद्वान एक से अधिक दृष्टिकोणों को मिलाकर राजनीति के अध्ययन ककरते हैं । लेकिन कुछ विद्वानों का यह मानना है कि ये अभी तक दृष्टिकोण राजनीति के आयामों की व्याख्या नहीं कर पाते है। ये वैकल्पिक दृष्टिकोण को अपनाते है जिसे हम उत्तर–आधुनिक दृष्टिकोण (Post-Midernist fromwork) के नाम से जानते हैं। दार्शनिक ल्योटार्ड से प्रेरित उत्तर–आधुनिकतावाद दृष्टिकोण को अनेक विषयों के विश्लेषण लिए उपयोग में लाया गया है। उत्तर–आधुनिक–दृष्टि के समर्थक समाज में हो रहे संकट के लिए आधुनिकता नियोजन को जिम्मेदार मानते हैं। उनके अनुसार, आधुनिकता नियोजन ने लघु पहचान, परंपरा एवं स्वदेशी ज्ञान व्यवस्था की स्वायत्ता को महत्ता नहीं दी है। इसलिए अस्मिता, सामाजिक आंदोलनों तथा जातिय एवं धार्मिक संकट के एक घटने के कारण। उत्तर–आधुनिकता दृष्टिकोण का महत्व बढ़ गया है। उत्तर आधुनिक दृष्टिकोण को अपनाने वाले परंपरा, सतत विकास तथा मूल ज्ञान को आधुनिकता का विकल्प मानते हैं। गाँधीवादी, समाजवादी, मार्क्सवादी आधुनिकता के एक सामान आलोचक एक मंच पर आ गए है। यही वैकल्पिक विचार उत्तर–आधुनिकता की तरफ इशारा करते हैं। उत्तर–आधुनिकता दृष्टिकोण सामाजिक आंदोलन, हिंसा, तथा विभिन्न पहचान का अध्ययन करते हैं। इनका उपयोग विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विषयों में किया है।

अब इस दृष्टिकोण की राज्य की राजनीति के अध्ययन में चर्चा करेंगे। कुछ विद्वानों में काफी हद तक आम सहमति है कि राष्ट्र–राज्य, राजनीतिक व्यवस्था, पार्टी–प्रणाली, जाति व्यवस्था के अध्ययन पर आदि आधुनिक परियोजना का प्रभाव पड़ा है। राजनीति में जहाँ राजनीतिक व्यवस्था के भागों को पर्याप्त स्वायत्ता नहीं दी जाती, वहीं शैक्षणिक अध्ययन में आधुनिक परियोजना या आधुनिकता का प्रभाव इन भागों की उपेक्षा में परिलक्षित होता है। इस तरह के विश्लेषण दृष्टिकोण से हटकर बहुत से विद्वान विशाल इकाइयों के खण्डों के अध्ययन और उनकी स्वायत्ता की के अध्ययन को आवश्यकता मानते हैं।

अनौपचारिक रूप से उत्तर–आधुनिक दृष्टिकोण से जुड़ा हुआ एक ओर दृष्टिकोण है। जिसे प्रवचन (डिस्कार्स) या विनिर्गमक विश्लेषण (एनेलेसिस) है। डिस्कार्स या डिकस्ट्रक्सनिस्ट एनेलिसिस किसी विषय इकाई का अध्ययन उसके सार को हिस्सों में

बाँट कर करता है। इसे समझने का सबसे अच्छा तरीका माइकल फूको ने सुझाया है। इसके अनुसार किसी विषय को एक संदर्भ में रखकर तथा उसका ज्ञान शक्ति और विमर्श–रचना के संदर्भ में रखकर विश्लेषण किया जाता है। उदाहरण के लिये, एक से अधिक दलों के बीच संघर्ष होने पर वह जानना कठिन है कि सत्य क्या है। विरोधाभास वाला प्रत्येक प्रत्याशी अपने कथन को तर्कसम्मत बताता है। ऐसी स्थिति में यह जानने की असंगति है कि कौनसा पक्ष सही हैं। अतः इससे संबंधित संघर्षों, दौरों और प्रक्रियाओं को उनके विशेष संदर्भ में रखकर ही समझना संभव हो सकता है। पॉल ब्रास ने अपनी पुस्तकों – *''दॉ थेफ्ट ऑफ एन आइडल : दा टक्सेट एण्ड कॉटेक्स्ट ऑफ रिफ्रेजेंटेशन ऑफ कालेक्टिव वायलेंस''* तथा *''प्रोडक्सन ऑफ हिंदू मुस्लिम वायलेंस इन काटेपरे इंडिया''* में विकसित किया है। इस दृष्टिकोण को विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच जातियता आधारित हिंसा के विश्लेषण के लिए किया हैं। उनका तर्क है कि, दंगों की वास्तविकता को समझना मुश्किल है तथा दंगे, फसाद, संस्थाऐं इत्यादि को उचित संदर्भ में रखकर ही देखा जा सकता है।

2.5 संघ-निर्माण दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण आधुनिकता या विकासवादी दृष्टिकोण के विरूद्ध विकसित किया गया है। इसे स्वतः नियंत्रित आंदोलनों, स्वायत्ता आंदोलनों, विद्रोह, अलगाववादी आंदोलनों और उनसे उत्पन्न होने वाले संघर्षों से उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन के लिए उपयुक्त माना जाता है। इसे विशेष रूप से उत्तर–पूर्व भारत की परिधी में स्थित राज्य जैसे पंजाब या किसी अन्य राज्य में जहाँ आत्म–निर्णय आंदोलन हुए हैं, विश्लेषण के उपयुक्त माना जा सकता है। इस दृष्टिकोण की सबसे मुखर अभिव्यक्ति संजीव बरूआ की पुस्तक *''इंडिया अंगेस्ट इटसेल्फ''* में मिलती है। इस परिप्रेक्ष्य के पक्ष में तर्क दिया जाता है कि संघवाद की समस्याओं का अध्ययन करने के लिये विकास का दृष्टिकोण राष्ट्र–राज्य के निर्माण के पक्ष में पक्षपातपूर्ण हैं। इस तरह के परिप्रेक्ष्य में, राज्यों की समस्याओं पर अनदेखी की जाती है। बल्कि यह परंपरा और आधुनिक के बीच विरोधाभास तथा महत्वाकांक्षी नई सामाजिक शक्तियों की आवश्यकताओं तथा उनकी माँगों को पूरा करने की क्षमता की असंगति पर अधिक बल देता है। नीति–निर्माताओं और देश के प्रमुख मत का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वानों ने संघटक राज्यों के दृष्टिकोण को ध्यान में नहीं रखा है। वे छोटे राज्यों के प्रति सौतेला व्यवहार और अभिमानी रवैया अपनाते हैं। संजीव बरूआ इंगित करते हैं कि 'राष्ट्र–राज्य' (Nation-building) परिप्रेक्ष्य को छोड़ देना चाहिये और 'वास्तविक–संघीय निर्माण'' (Genuine federation-building) परिप्रेक्ष्य को अपनाना चाहिए। इससे राज्य स्तर के राष्ट्रवाद तथा बड़े राष्ट्रवाद के बीच संबंधों को मजबूती मिलेगी।

2.6 सामाजिक-पूँजी दृष्टिकोण

पटनाम की पुस्तक *'मेकिंग डेमोक्रेसी वर्क : सिविक ट्रेडिशंस इन मोईन इटली,* प्रकाशन के बाद सामाजिक पूँजी (social capital) की अवधारणा काफी लोकप्रिय बन गई हैं। सामाजिक पूंजी नागरिक समाज एवं लोकतंत्र के अस्तित्व संकेत है। सामाजिक संगठनों पर टोकविलिये विचारों को आधार मानकर पटनम ने नागरिक समजा की अवधारणा को लोकप्रिय बनाया था, जिसमें विश्वास, सहभाजित मूल्य, तथा

संयोजनों के सदस्यों के मध्य नेटवर्किंग होते हैं। नये सामाजिक आंदोलनों, सामाजिक समाजों के उदय तथा सुदृढ़ लोकतंत्र (substentive democracy) के अध्ययन की आवश्यकता ने इस दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण बना दिया है। समाज के विभिन्न हिस्सों के अध्ययन करने को कई विद्वानों ने इस दृष्टिकोण को अपनाया है। आशुतोष वार्ष्णेय ने अपनी पुस्तक *''एथनिक कनफ्लिकट्स एण्ड सिक्किम लाईफ : हिंदूज एण्ड मुस्लिम इन इंडिया''* में भारत के छः शैक्षिक क्षेत्रों में जातीय दंगों का अध्ययन करने के लिये सामाजिक पूँजी अवधारणा का उपयोग किया है। उनका तर्क हैं कि सांप्रदायिक दंगे उन शहरों में होते हैं जहाँ लोगों के साथ कोई सामाजिक–सामूहिक संबंध नहीं होते हैं। वे वहाँ, नहीं होते जहाँ लोगों के बीच सामाजिक–सामुहिक संबंध है। वे छः शहरों के जोड़ों के अनुभव के आधार पर अपने तर्क को सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। जिनमें से तीन शहरों दंगे हुए हैं तथा तीन में नहीं हुए। इसी प्रकार के अन्य क्षेत्रों में राजनीतिक अध्ययन के लिये सामाजिक पूँजी दृष्टिकोण का प्रयोग कर अध्ययन द्वैपायन भट्टाचार्य, नीरज जमाल, सुधा पाई, विष्णु महापात्रा इत्यादि द्वारा संपादित पुस्तक *''इंटेरो–गेटिंग सोशल कैपिटल''* में छपे हैं। इस अध्ययनों को करने वाले विद्वानों ने सामाजिक पूंजी के अस्तित्व और भारत के राज्यों में लोकतंत्र के साथ उसके संबंधों का अध्ययन करने का प्रयास किया है।

2.7 चुनावों का अध्ययन के लिये दृष्टिकोण

चुनाव लोकतंत्र के अस्तित्व का सबसे अधिक दिखने वाला मापदण्ड है। हालांकि चुनाव लोकतंत्र के लिये न्यूनतम आवश्यकता है फिर भी आलोचकों के अनुसार लोकतंत्र के अस्तित्व के लिये हमेशा यह आवश्यक नहीं है। तथापि, इसके विपिरी सुदृढ़ प्रजातंत्र (Substantive democrecy) प्रजातंत्र की सफलता का प्रभावशाली प्रतीत है। भारत में चुनाव लोकतंत्र को सबसे प्रमुख विशेषता में माना जाता है, चाहे वह राष्ट्रीय, राज्य या स्थानीय स्तर पर ही हो। भारत में चुनाव लगातार होने के कारण उनकी महत्वता और अधिक बढ़ गई है। चुनाव हमेशा विद्वानों, पत्रकारों, और चुनाव विश्लेषकों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। विशेषकर राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर। लोगों की चुनाव में रुचि जो 1960 के दशक के पश्चात शुरू हुई वह 1990 दशक के बाद और अधिक बढ़ गयी है। बहुत से लोग, सर्वे एजेंसी, चुनाव विश्लेषक (सैफोलोजिस्ट) चुनाव के पूर्व तथा बाद में चुनावी सर्वेक्षण करते हैं ये पब्लिक की चुनाव के विषय में उत्सुक्ता मिटाते हैं, तथा प्रजातंत्र के विश्लेषण के लिए विषय देते हैं। इसे हमे सर्वे शोध के नाम से जानते हैं। इस दिशा में नई–दिल्ली स्थित सी.एस. डी.एस. मुख्य भूमिका निभाता है। यह एजेंसी समय–समय पर चुनावी सर्वेक्षण करके आंकड़े तैयार करती है और उसे शैक्षिक प्रयोग के लिये उपयोग में लिया जाता है। ये सर्वेक्षण मतदाताओं की प्रोफाइल, क्षेत्र और राजनीतिक दलों इत्यादि से संबंधित होते हैं। हम कुछ प्रश्नों के उत्तर भी सर्वेक्षण से प्राप्त करते हैं जैसे कि ''क्या भारत अधिक लोकतांत्रिक बन गया है?'' विशेषकर सामाजिक समूहों की भागेदारी के बढ़ने के बाद यह प्रश्न अहम हो गया है।

चूंकि चुनावों के अध्ययन के लिये सर्वेक्षण शोध समयबद्ध होते हैं और चुनावों के पहले या बाद में किये जाते हैं। इसलिए ये सर्वेक्षण यह नहीं बताते कि चुनाव न होने के समय क्या होता है। पॉल, आर. ब्रास का कहना है कि यदि सर्वेक्षण अनुसंधान का ''पारिस्थितिक विश्लेषण'' (ecological analysis) से संबंध हो तो हम राजनीतिक प्रक्रिया का बेहतर तरीके से विश्लेषण कर सकते हैं। पारिस्थितिक विश्लेषण का अर्थ

है इस दृष्टिकोण के द्वारा देश के विभिन्न क्षेत्रों या देश के राज्य के आँकड़ों का विश्लेषण आँकड़ों आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक इत्यादि के संबंधों को देखकर किया जा सकता हैं। चुनावी प्रदर्शन एवं राजनीतिक दलों के बीच संबंधों के आधार पर हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं। ब्रास ने आँकड़ों को पारिस्थितिक विश्लेषण के साथ मिलाया कर अपने अध्ययन – ''द पोलिटिसाईजेशन ऑफ पीजेंट्री इन यू.पी.'' में प्रदर्शित किया।

अभ्यास प्रश्न 2

नोटः i) उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का उपयोग करें।

ii) अपने उत्तर के सुझावों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) राज्यों में पहचान की राजनीति के लिए उत्तर–आधुनिक (Post-modernist) दृष्टिकोण कैसे लागू होती है, चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2.8 संदर्भ

आमन्ड, जी. ए. कोलमैन, जे. एस. (एड़) (1960). *द पोलिटिकस ऑफ डवलपिंग एरियाज,* प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

भांभरी, सी. पी. (1974). ''फंक्शनलिज़्म इन पोलिटिक्स, ए रीजोइन्डर'' *द इंडियन जरनल ऑफ पोलिटिकल साइंस के.* 35 न. 2, (अप्रैल–जून) 1978 पृष्ठ, 185–191.

भांभरी, सी. पी. (1989). ''द् इंडियन स्टेटः कोन्फिलिट्स एण्ड कंट्राडिक्शन'' इन जोया हसन, एस.एन. झा, रशीदुछ्दीन खान *द स्टेट, पोलिटिकल प्रोसेसेज एण्ड आइडेंटिटी,* सेज नई दिल्ली.

भट्टाचार्य, द्वैपायन, एवं अन्य (ईडी.) (2004). *इंटैरोगेटिंग सोशल कैपिटल, द इंडियन एक्सपीरियंस,* सेज प्रकाशन, नई दिल्ली.

ब्रास, पॉल, आर. (1998). *द् थेक्ट ऑफ एन आइडोल : टेक्सट एण्ड कोन्टेक्सट इन रिप्रजेन्टेशन ऑफ कलैक्टिव वायलेंस,* रीगल बुक्स. कलकत्ता।

कोठारी रजनी, (1970), *पोलिटिक्स इन इंडिया* : ओरियंट ब्लैक स्वान. दिल्ली।

2.9 सारांश

संक्षेप में, दृष्टिकोण सामाजिक वास्तविकता के अध्ययन के लिए बहुत आवश्यक है। राजनीति के अध्ययन के लिये तीन प्रकार के दृष्टिकोण मौजूद है – व्यवस्थित, मार्क्सवादी तथा नव–मार्क्सवादी। व्यवस्थित दृष्टिकोण व्यवस्था के विश्लेषण की बात करता है। यह तर्क देता है कि सभी व्यवस्थाओं में कुछ भाग होते हें जो आपस में एक–दूसरे से द्वंद करते है तथा साथ–साथ तालमेल मिलाए रखते हैं। इसके कारण इस प्रक्रिया में व्यवस्था बरकरार रहती है, यह चुनौतियों को सहती है तथा वातावरण

के अनुसार ढ़लती है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण समाज में आर्थिक संबंधों पर जोर देती है। राजनीति का चरित्र समाज में आर्थिक द्वंदों पर निर्भर करता है। लेकिन मार्क्सवादी दृष्टिकोणों में बदलाव आए हैं। इन बदलावों के कारण आर्थिक कारकों के अलावा गैर–आर्थिक कारक भी राजनीति को प्रभावित करते हैं। इन कारकों की सापेक्षिक स्वायत्ता होती हैं। इन्हें हम नव–मार्क्सवादी दृष्टिकोण कहते हैं। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि ये दृष्टिकोण केवल राजनीतिक विश्लेषण तक ही सीमित नहीं। इन्हें अन्य विषयों के अध्ययन के लिए प्रयोग किया जा सकता है, चाहे स्थानीय, राज्य या राष्ट्रीय इकाई क्यों न हो। जब इन दृष्टिकोणों के अध्ययन के लिए किया जाता है तो इन्हें राज्य राजनीति के अध्ययन के दृष्टिकोण कहा जा सकता है। राज्य की राजनीति का कोई समान दृष्टिकोण मौजूद नहीं है। इस संदर्भ में, ये दृष्टिकोण एक विशेष रूप में महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1) व्यवस्थित दृष्टिकोण का उपयोग राज्य की राजनीति से संबंधित राजनीतिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं के लिये किया जाता है। यह इस पर केंद्रित है कि एक राजनीतिक व्यवस्था एक समाज में होने वाले बदलावों के साथ कैसे तालमेल रखती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार एक राजनीतिक व्यवस्था समाज में परिवर्तन के साथ अपने आप को ढ़ाल लेती है, और इसका अस्तित्व बना रहता है।

2) मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार राजनीति की व्याख्या वर्ग संबंधों के उत्पादन और उत्पादन की शक्तियों के संदर्भ में की जाती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार राजनीति समाज में वर्ग संबंधों से प्रभावित होती है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण के दो प्रकार है – शास्त्रीय और नव–मार्क्सवादी। शास्त्रीय दृष्टिकोण से पता चलता है कि राजनीति का निर्धारण करने में अर्थव्यवस्था की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। नव–मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार गैर–आर्थिक, जिसमें राजनीति भी शामिल है, भी महत्वपूर्ण हैं। आर्थिक कारक अति निर्धारक नहीं है। गैर–आर्थिक कारकों की सापेक्ष स्वायत्ता होते है।

बोध प्रश्न 2

1) उत्तर–आधुनिक व्यवस्था राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न आयामों को और उन कारकों को महत्व देते हैं जो राजनीति को प्रभावित करते हैं। इन कारकों में जाति, धर्म, जातीयता, भाषा आदि की पहचान शामिल है। ऐसी पहचान पर ध्यान देकर उत्तर–आधुनिकतावादी दृष्टिकोण ने व्यवस्थित और मार्क्सवादी दृष्टिकोणों के विपरीत उन्हें पर्याप्त मान्यता दी है। जैसा कि आपने इस इकाई में पढ़ा है, व्यवस्थित और मार्क्सवादी दृष्टिकोण में पहचान के बजाय क्रमशः राजनीतिक व्यवस्था और वर्ग संबंधों को अधिक महत्व देते हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY